IJAER/March-April 2016/Volume-4/Issue-5/Article No-2/ 4-8 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

अरविन्द का राजनीति से अध्यात्म की ओर झुकाव का मूल्यांकन

AZIZUL HASAN
Research Scholar
Sunrise University, Alwar
Rajasthan

Dr. ANUP PRADHAN
Supervisor
Sunrise University, Alwar
Rajasthan

सार–
आधुनिक भारत के इतिहास में राष्ट्रीय आन्दोलन एक बहुत ही रूचिकर एवं विशिष्ट प्रकार का विषय माना गया है, जिसका अध्ययन करने में भारततीय इतिहासकारों ने काफी दिलचस्पी दिखाई है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में कुछ ऐसे अदभुत एवं महान व्यक्ति का योगदान रहा, जिनकी गणना विश्व के महानतम व्यक्तियों में की जाती है। ये व्यक्ति इतिहास में उग्र विचार को मानने वाले कहे गये। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान एक विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष के साथ–साथ नई चेतना के दौर का विकास तेजी से हुआ। श्री अरविन्द घोष के राजनीतिक विचारो कोई शोध कार्य नहीं हुआ है क्योकि इस विषय में काफी शोध सामग्री उस समय उपलब्ध नहीं थी। प्रस्तुत शोध पेपर का विषय मौलिक एंव नवीन है।

प्रस्तावना

भारतीय आकाश में श्री अरविन्द वर्षों तक सर्वाधिक आभायुक्त नक्षत्र की भांति प्रकाशित रहे। यद्यपि वे आकाश की इस ऊंचाई पर कुछ वर्षों तक ही रहे, पर कन्याकुमारी से हिमालय तक का सारा क्षेत्र उनकी विस्मयकारी आभा से भर गया। श्री जवाहर लाल नेहरू ने श्री अरविन्द के बारे में कहा –''सक्रिय राजनीति का उनका जीवन बहुत छोटा था, मात्र 1905 से 1910 तक, उसके बाद वे पांडिचेरी, यौगिक साधना एवं अभ्यास के लिये चले गये। किन्तु सिर्फ इन पांच वर्षो को तेजोदीप्त उल्का की तरह उन्होंने उद्भासित कर दिया और भारत की युवा पीढ़ी पर शक्तिशाली प्रभाव छोड़ गये।'' सक्रिय राजनीति में वह केवल पांच वर्ष रहे। उनका राजनीति से सन्यास, उनके उत्कर्ष के समान ही नाटकीय था।

1905 के बंग भंग के बाद के वर्ष ऐतिहासिक थे। उग्र राष्ट्रवादी नेताओं के लिये ये वर्ष सक्रिय कार्यवाही तथा उत्तेजना से भरे वर्ष थे। केवल बंगाल विभाजन के विरूद्ध ही नहीं वरन् ब्रिटिश शासन की सत्ता जारी रहने के विरूद्ध बंगाल से शुरू होकर – ब्रिटिश शासन विरोधी आन्दोलन की लहर सारे देश में व्याप्त हो गई। महाराष्ट्र में तिलक, पंजाब में लाला लाजपातराय और अन्य उग्रवादी नेता आन्दोलन के स्तम्भ बने।

बंग–भंग विरोधी रोष के प्रथम आवेग में ऐसा लगा, कि अंग्रेजों का विरोध करने में सब एक हो जायेंगे। 1905 में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन के प्रमुख, उदारपन्थी नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले अध्यक्ष बने और उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में विभाजन की आलोचना की उन्होंने कहा,..... इसी समय हम सबके मस्तिष्क में मुख्य प्रश्न बंग–भंग का है..... हमारे बंगाली भाईयों के प्रति अन्याय हुआ है, इसके फलस्वरूप राष्ट्र भर में ऐसा गहरा दुख और घोर विरोध आ गया है, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।''

इस अध्यक्षीय भाषण से ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों दलों के बीच समझौता हो जायेगा, परन्तु यह भ्रम मात्र साबित हुआ। तिलक और उनके सहगामी, जिनमें बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रमुख नेता श्री अरविन्द भी शामिल थे, अंग्रेजों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही करना चाहते थे जबकि उदारपंथी नेता, आरम्भिक आवेश शान्त हो जाने पर अपनी भिक्षावृत्ति के लोक में लौट गये थे।

1905 में अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री गोखले ने स्वदेशी, बहिष्कार आन्दोलनों का समर्थन किया तो अनेक लोगों को आश्चर्य हुआ। उनका कहना था कि बंगालियों ने, हर तरह से उपयुक्त और न्यायसंगत कदम उठाया था। तिलक और उनके अनुयायी स्वदेशी एवं विदेशी माल के बहिष्कार पर पथक–पृथक प्रस्ताव पारित करना चाहते थे, जिससे प्रत्येक का मौलिक महत्व स्पष्ट हो जाये। लेकिन अन्ततः उन्होंने श्री मालवीय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। प्रस्ताव में कहा गया कि जनता के निवेदन और विरोधों की एकदम अवहेलना करके बंगाल के विभाजन पर तुली हुई भारत सरकार की जिद की और ब्रिटिश सत्ता का ध्यान आकर्षित करने के लिये एकमात्र वैधानिक प्रभावपूर्ण और अन्तिम उपाय समझकर बंगाल के लोग विदेशी माल का बहिष्कार करने को विवश हुए। अधिकारियों ने दमनचक्र की नीति अपनाई। सरकार की इस दमननीति के विरूद्ध कांग्रेस ने अपना प्रचंड और घोर विरोध व्यक्त किया।

लेकिन, प्रस्ताव में जानबूझ कर यह बात रहने दी गई कि कांग्रेस विदेशी माल के बहिष्कार से सहमत थी या नहीं। तिलक और उनके दल वालों ने इसे आगे की ओर एक कदम माना, उग्रवादी नेता स्वदेशी और बहिष्कार के

सार्वजनिक आन्दोलन करने में लगे रहे। कुछ माह पश्चात् बंगाल से अरविन्द, विपिनचन्द्र पाल और कुछ अन्य नेताओं ने कलकत्ता में होने वाली अगली कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये तिलक का नाम प्रस्तुत किया। इससे उदारपन्थी घबरा गये, उन्होंने श्री दादा भाई नौरोजी को जो उन दिनों इंग्लैंड में थे, तार देकर इस पद के लिये आमन्त्रित किया। यह उनकी एक चतुराई भरी चाल थी। चिरोल के अनुसार, ''कोई भी उनका खुला विरोध करने का साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि वह कांग्रेस के पिता के समान थे, अपने अच्छे स्वभाव एवं उद्देश्यों की पवित्रता के कारण उनका सर्वत्र सम्मान था''।

1906 के अधिवेशन के समापन के समय निर्णय हुआ था कि अगला अधिवेशन नागपुर में होगा, लेकिन उदारपन्थी – बहुल अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य समिति की बैठक बम्बई में हुई और उसने नागपुर के स्थान पर सूरत में अधिवेशन करने का निश्चय किया। उग्र दल वालों को इससे बुरा लगा और उन्होंने उदारपंथियों पर आरोप लगाया कि, ''उन्होंने नागपुर में अधिवेशन का निर्णय इसलिये बदला कि वहा तिलक के अनयायियों की संख्या ज्यादा थी, सूरत उदारपंथियों का गढ़ समझा जाता था इसलिये सुरक्षित था।''

अधिवेशन शुरू होने से पहले तिलक श्री अरविन्द और दूसरे क्रान्तिकारी नेताओं ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि वे कांग्रेस में फूट नहीं डालना चाहते। अपराह्न में अधिवेशन हुआ और अध्यक्ष पद को लेकर हलचल मच गई। अध्यक्ष के चुनाव के विषय में तिलक कुछ कहना चाहते थे, पर उन्हें नियम विरूद्ध घोषित किया गया। उन्होंने बोलने का हठ किया तो सहसा कोलाहल मच गया, हाल में पुलिस आ गई और सभा अस्त व्यस्त होकर भंग हो गई। इस घटना से कांग्रेस के उग्रवादी दल एवं उदार दल के बीच अन्ततः खाई बन गई। उग्रवादियों ने संगठन छोड़ दिया। संस्था पर उदारपन्थियों का एकाधिकार हो गया। कई वर्ष तक उदारपन्थी नेता ही कांग्रेस चलाते रहे, सम्मेलन करते रहे। पर उनको जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था। श्री आर0आर0 दिवाकर ने कहा, ''सूरत कांग्रेस भंग हो गई, लेकिन उसने इतिहास का एक अध्याय लिख दिया। परिणाम यह हुआ कि उदारपन्थियों के पास कांग्रेस का शरीर तो रह गया लेकिन आत्मा उग्रवादियों के साथ चली गई।

श्री अरविन्द का योग

भारत में चिरकाल से लोग योग–साधना करते आये हैं। परंतु श्री अरविन्द का योग उन योग–पद्धतियों से कई बातों में अलग है। श्री अरविन्द प्राचीन प्राप्तियों का विरोध नहीं करते, उनका विरोध कोई कर ही कैसे सकता है। हां, वे हर प्राचीन बात से चिपके रहने के विरोधी हैं। वे यह नहीं चाहते कि प्राचीन चीज को ही चरम लक्ष्य माना जाये। सृष्टि में विकास हो रहा है, अध्यात्म–मार्ग ही क्यों पीछे ताकता रहे ? हमारे योग का लक्ष्य भी आगे बढ़ता जाता है। श्रो अरविन्द कहते हैं कि हमारी सारी सत्ता को, हमारे मन, प्राण, शरीर तक को अपनी सारी शक्ति इस बात पर केंद्रित करनी चाहिये कि हम भगवान् के काम के लिये योग्य बन सकें। हमारा मन अंधेरे में टटोलनेवाला अस्त–व्यस्त राहगीर न रहकर, अपने से ऊपर की शक्ति का वाहक बने; हमारा प्राण आज की तरह तुच्छ, स्वार्थी, आवेशों और इच्छाओं का भंडार न होकर, शांत, सुस्थिर ऊर्जा को लानेवाला बने, यह शरीर भी आज की तरह मिट्टी का लौंदा न रहकर, भगवान् का सचेतन और प्रकाशमय सेवक बन सके। श्री अरविन्द अपने योग–मार्ग के लिये कोई निश्चित क्रियाएं नहीं बताते। हर एक की साधना का अपना अलग मार्ग होगा। श्री अरविन्द के अनुयायी का सारा जीवन ही योग होना चाहिये। उन्हें कुछ घंटे योग के लिये और कुछ घंटे भोग के लिये रखना स्वीकार नहीं है।

योग– योग का अर्थ है भगवान के साथ एकत्व चाहे वह एकत्व विश्वातोत हो या विश्वगत या व्यक्तिगत हो अथवा, जैसा कि हमारे योग में है, एक साथ यह सब तीनों ही हों। अथवा इसका अर्थ है एक ऐसी चेतना में प्रवेश करना जिसमें मनुष्य तुच्छ अहं, व्यक्तिगत, मन, प्राण और शरीर से अब सीमित नहीं रहता, बल्कि परम आत्मा के साथ या विश्वगत चेतना के साथ युक्त होता है, जिसमें वह अपनी निजी अंतरात्मा के विषय में, अपनी निजी आंतर सत्ता के विषय में और जीवन के यथार्थ सत्य के विषय में सचेतन रहता है। यौगिक चेतना में चले जाने पर मनुष्य केवल वस्तुओं का ही ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता बल्कि शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, और केवल शक्तियों का ही नहीं वरन् शक्तियों के पीछे विद्यमान सचेतन पुरूष का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वह इन सब चीजों का ज्ञान केवल अपने ही अन्दर नहीं वरन् विश्व के अन्दर भी प्राप्त कर लेता है।

योग का आदर्श – योग का आदर्श यह है कि सब कुछ भगवान के अन्दर और उनके इर्द–गिर्द केन्द्रित होना चाहिए और साधकों का जीवन उसी सुदृढ़ नींव के ऊपर स्थापित होना चाहिए। उनके व्यक्तिगत संबंधों का भी केन्द्र भगवान ही होने चाहिए। अधिकृत सभी संबंध प्राणगत आधार से उठकर आध्यात्मिक आधार का एक रूप और यंत्र बन जाना चाहिए–इस बात का अर्थ यह है कि साधकों के आपस में कोई भी संबंध क्यों न हों, उनमें से समस्त ईर्ष्या, कलह, घृणा, असंतोष विद्वेष तथा अन्य अशुभ प्राणगत भावों को निकाल फेंकना चाहिए, क्योंकि ये सब चीजें आध्यात्मिक जीवन का अंग नहीं बन सकतीं।

योग का उद्देश्य – योग का उद्देश्य है अपनी चेतना को भगवान की ओर अधिकाधिक अंतर चेतना में निवास करना तथा वहीं से बाहरी जीवन पर कार्य करना, अपने अंतरतम हृत्पुरूष को सामने ले आना और हृत्पुरूष की शक्ति में सारी सत्ता को इस तरह शुद्ध और परिवर्तित करना जिससे कि वह रूपांतर के लिए तैयार हो सके तथा भागवत ज्ञान, संकल्प और प्रेम के साथ युक्त हो सके।

योगसाधना – योगसाधना करने का मतलब ही है सब प्रकार की आसक्तियों को जीतने और एकमात्र भगवान की ओर मुड़ जाने का संकल्प करना। योग की सबसे प्रधान बात है पग–पग पर भागवत्कृपा पर विश्वास रखना, निरंतर अपने विचार भगवान की ओर मोड़ते रहना और जब तक अपनी सत्ता उद्घाटित न हो जाए और आधार के अन्दर कार्य करती हुई श्रीमां की शक्ति का अनुभव न हो सके तब तक अपने आपको समर्पित करते रहना।

श्री अरविन्द योग की ओर आकर्षित हुए ता इसलिए कि वह इसे शक्ति–संचय का साधन समझते थे। बड़ौदा में रहते हुए ही श्री अरविन्द ने योग–शक्ति से रोग ठीक करने का पहला उदाहरण देखा। उनके छोटे भाई बारीन को पर्व पर्वत ज्वर हो गया था। बहुत तरह का इलाज करवाया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। अन्त में एक नागास्वामी आया। उसने एक गिलास में पानी मँगवाया और कुछ मन्त्र बोलते–बोलते पानी में चाकू फिराकर वह पानी बारीन को पिला दिया। बारीन का बुखार छूट गया और दोबारा नहीं आया।

श्री अरविन्द ने यह सारी क्रिया देखी और वह उससे प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी आंखों से योग शक्ति की क्रिया देखी और देखा कि उन्होंने जो काम हाथ में लिया है, उसके लिए इसमें क्या संभावनाएं हैं। इन बातों में वह सामान्य रूचि तो लेते रहे थे, परन्तु उन्होंने योगाभ्यास में लगने से इंकार किया था, क्योंकि जैसा वह लिखते हैं, ''मैं सोचता था कि वह योग मेरे लिए नहीं है जो संसार का त्याग करने के लिए कहता है, मुझे तो अपने देश को स्वाधीन करना है। मैंने इस चीज को गम्भीरता से लिया, जब मैंने सुना कि जिस तपस्या का उपयोग संसार से दूर जाने के लिए किया जाता है, उसी को कर्म की ओर प्रवृत्त किया जा सकता ह। मैंने जाना कि योग शक्ति देता है तो मैंने सोचा कि मैं शक्ति क्यों न पा लूं और फिर उसका उपयोग अपने देश को स्वाधीन करने के लिए करूं।''

उन दिनों यह विश्वास था कि गम्भीरता से योग करने के लिए प्रणायाम एक अनिवार्य तैयारी है। अतः श्री अरविन्द ने चाणोद के स्वामी ब्रहूमानन्द के शिष्य इंजीनियर देवधर से सलाह की और अभ्यास शुरू कर दिया। परिणाम सचमुच प्रभावशाली था। वह कहते हैं:–

''मेरा अपना अनुभव यह है कि मनुष्य का मस्तिष्क प्रकाशमय बन जाता है। जब मैं बड़ौदा में प्रणायाम करता था तो दिन में पांच–छह घंटे लगाता था, तीन घंटे सवेरे और दो घंटे शाम को। मन बहुत प्रबद्ध रहता था और शक्ति के साथ काम करता था। उन दिनों में कविता लिखा करता था साधारणतः मैं पांच, सात या दस पंक्तियां दिन भर में लिखता था–महीन में लगभग दो सौ पंक्तियां। प्रणायाम के बाद मैं दो सौ पंक्तियां आधे घंटे में लिख लेता था। पहले मेरी स्मरण शक्ति मंद थी, लेकिन बाद में जब प्रेरणा आती तो मैं पंक्तियों को उनके क्रम से याद रख सकता था और फिर जब सुविधा होती, उन्हें लिख लेता था। इस तरह बढ़ी हुई मानसिक क्रियावली के साथ ही साथ मै मस्तिष्क के चारों ओर वैद्युत ऊर्जा देख सकता था।''

एक और अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा, ''उससे कुछ विलक्षण परिणाम आये। पहले तो मैंने अपने चारों ओर बिजली का अनुभव किया। फिर कुछ छोटे–मोटे अर्न्तदर्शन हुए। तीसरा, मेरे अन्दर कविता का जोरदार प्रवाह होने लगा। पहले मैं कठिनाई से लिखता था। कुछ समय के लिए प्रवाह तेज होता था, फिर सूख जाता था। अब वह आश्चर्यजनक बल के साथ बढ़ गया और मैं बहुत तेज गति से गद्य और पद्य दोनों लिखने लगा। यह प्रवाह अभी तक (1939 तक) नहीं सूखा। उस समय के बाद यदि मैंने ज्यादा कुछ नहीं लिखा तो इसका कारण यह है कि मुझे कुछ और करना था, लेकिन जिस क्षण मैं लिखना चाहूं, प्रवाह मौजूद होता है। चौथा, प्रणायाम के अभ्यास के समय ही मेरे शरीर पर मांस चढ़ना शुरू हुआ। उससे पहले मैं बहुत दुबला–पतला था। मेरी त्वचा भी चिकनी और गोरी होने लगी। शायद मेरे अन्दर जो परिवर्तन हो रहे थे, उसके कारण मेरी लार में कोई विशेष नया पदार्थ आ गया। मैंने एक और अनोखी चीज देखी। मैं जब कभी प्रणायाम के लिए बैठता था तो चारों ओर चाहे जितने मच्छर मंडराते रहें पर मुझे एक भी न काटता था। मैंने अधिकाधिक प्रणायाम शुरू किया, परन्तु और कोई नये परिणाम न दिखायी दिये। इन्हीं दिनों मैंने निरामिष भोजन शुरू किया। उसने कुछ हल्कापन और शुद्धि प्रदान की।''

इस विलक्षण योगी के बारे में श्री अरविन्द ने और भी कुछ कहा है, ''यह जानी हुई बात है कि वह पिछले अस्सी वर्षों से नर्मदा तट पर निवास कर रहे थे और जब वह यहां आये थे तो उस अवस्था में थे जब प्रौढ़ता अतिपरिपक्वता में बदल जाती है। मैं उनसे उनकी मृत्यु के कुछ ही पहले मिला था। तब उनका शरीर बहुत सुन्दर था जिसमें सफेद दाढ़ी और बालों के सिवा बुढ़ापे का कोई चिन्ह न था। वह बहुत लम्बे और मजबूत थे। वह मीलों चल सकते थे जिससे उनके कम उम्र वाले शिष्य तेजी से चलने का प्रयास करके पीछे रह जाते थे। उनका सिर बड़ा था और चेहरा शानदार, जो देखने में ज्यादा पुराने जमाने के लोगों का मालूम होता था। वह कभी अपनी उम्र या अपने भूतकाल की बात न करते थे। कभी अचानक कोई बात निकल जायें तो और बात है। एक बार उन्होंने ऐसी कुछ बात मेरे सुपरिचित, बड़ौदा के सरदार मजूमदार से कही थी। मजूमदार को मालूम हुआ कि उनके दांत में

बहुत दर्द हो रहा था। मजूमदार उनक लिए उन दिनों प्रचलित दन्तधावन की एक दवाई फ्लोरिलीन ले आये। योगी ने यह कहते हुए उसे लेने इंकार किया कि मैं कभी दवाइयों का उपयोग नहीं करता। मेरी एकमात्र दवाई नर्मदा का पानी है। रही बात दांत के दर्द की तो यह तो भाऊ गिरडी के समय से चला आ रहा है। भाऊ गिरडी मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ थे जो पानीपत के युद्ध (14–1–1761) में गायब हो गए थे। उनके शरीर का कभी पता न चला था। बहुतों ने यह निष्कर्ष निकाला कि ब्रहूमानन्द स्वयं भाऊ गिरडी थे, पर यह थी कपोल कल्पना। जो कोई ब्रहूमानन्द से परिचित था, वह उनकी किसी बात पर अविश्वास न कर सकता था। वह पूरी तरह सरल और सत्याचरण वाले आदमी थे। वह न तो ख्याति चाहते थे, न अपने आपको आरोपित करना। जब उनका देहान्त हुआ, तो उनका शरीर पूरी तरह बलवान था। उनकी मृत्यु क्षीणता के कारण नहीं, बल्कि नर्मदा तट पर टहलते समय जंग लगी कील के चुभ जाने और उससे हुए विषैले रक्त के कारण हुई।''

योग के लक्ष्य और उद्देश्य

योग का उद्देश्य है अपनी चेतना को भगवान् की ओर खोलना और अधिकाधिक आंतर चेतना में निवास करना और वहीं से बाहरी जीवन पर कार्य करना, उसे प्रभावित करना; अपने अंतरतम हृत्पुरूष को सामने ले आना और हृत्पुरूष की शक्ति से अपनी सारी सत्ता को इस तरह शुद्ध और परिवर्तित करना जिसमें वह रूपांतर के लिये तैयार हो सके तथा भागवत ज्ञान, संकल्प और प्रेम के साथ युक्त हो सके। दूसरे, यौगिक चेतना का विकास करना अर्थात् अपने आधार के सभी भागों को वैश्वभावापन्न बनाना, विश्व–पुरूष तथा विश्व–शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना और अधिमानस तक चेतना के सभी स्तरों में भगवान् के साथ युक्त होना। तीसरे, अधिमानस के परे जो परात्पर भगवान् हैं उनके साथ अतिमानस चेतना के द्वारा संबंध स्थापित करना, अपनी चेतना और प्रकृति को अतिमानस भावापन्न बनाना तथा क्रियाशील भागवत सत्य की सिद्धि और पार्थिव प्रकृति में इसके रूपांतरकारी अवतरण के लिये अपने–आपको एक यंत्र बनाना।

यह योग जीवन की शक्तियों का त्याग करना नहीं चाहता, बल्कि जीवन के प्रति और जीवन की शक्तियों क व्यवहार के विषय में हमारा जो भाव है उसे भीतर से परिवर्तित और रूपांतरित करना चाहता है। इन शक्तियों का व्यवहार अभी अहंकारपूर्ण भाव के साथ और अदिव्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है; इनका व्यवहार भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण के भाव के साथ और दिव्य कर्म के हेतु करना होगा। श्रीमां के लिये उन्हें फिर से जीत लेने की जो बात कही जाती है उसका तात्पर्य यही है।

श्री अरविन्द और माता जी के अनुसार सारा जीवन ही योग है। अगर हम इसमें सचेतन रूप से भाग लें तो परिणाम जल्दी आ सकता है। जड़ पदार्थों से लेकर पशु–जगत् तक प्रकृति का योग चलता है जिसमें वनस्पति, पशु आदि का सक्रिय सहयोग नहीं मिलता। मनुष्य को यह विशेषाधिकार दिया गया है कि वह इस योग में सचेतन और सक्रिय भाग ले सकता है।

मनुष्य आदि काल से ऊपर उठने का प्रयास करता आया है, भगवान् के साथ मिलने और एक हाने के लिये नाना प्रकार की कोशिशें करता आया है और ये कोशिशें ही विभिन्न योग–पद्धतियां हैं। प्रायः सभी का लक्ष्य रहा है :

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल।।

माता जी के अनुसार अन्य योग जहां समाप्त होते हैं, श्री अरविन्द का योग वहां से शुरू होता है। आइये, श्री अरविंद के शब्दों में ही उनके योग के उद्देश्य को जानने की कोशिश करें।

''हम जिस योग की साधना कर रहे हैं वह केवल हमारे लिये नहीं बल्कि भगवान् के लिये है; इसका उद्देश्य है भगवान् की इच्छा को जगत् में साधित करना, आध्यात्मिक रूपांतर लाना और मानवजाति के जीवन में, उसके मन, प्राण और शरीर की प्रकृति में एक दिव्य प्रकृति और दिव्य जीवन को उतार लाना। उसका उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है, बल्कि उसका उद्देश्य है मानव–सत्ता की मुक्ति और उसका रूपांतर। हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से आनंद पाना नहीं है, बल्कि हमारा उद्देश्य है दिव्य आनंद को–ईसा के स्वर्गीय राज्य को, हमारे सत्ययु को–पृथ्वी पर उतार लाना।''

इस योग की सबसे पहली प्रक्रिया है आत्मसमर्पण का संकल्प करना। तुम अपने समूचे हृदय और अपनी सारी शक्ति के साथ अपने–आपको भगवान् के हाथों में सौंप दो। कोई शर्त मत रखो, कोई चीज मत मांगो, यहां तक कि योग में सिद्धि भी मत मांगो, एकदम कुछ भी मत मांगो सिवा इसके कि तुम्हारे अंदर और तुम्हारे द्वारा भगवान् की ही इच्छा प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध होती रहे। जो लोग भगवान् से कुछ मांगते हैं उन्हें वह वही चीज देते हैं जिसे वे मांगते हैं, परंतु जो लोग अपने आपको दे देते हैं और कुछ भी नहीं मांगते उन्हें वे सब चीजें देते हैं जिन्हें उन्होंने या तो मांगा होता है या जिनकी उन्हें आवश्यकता हुई होती और उनके अतिरिक्त स्वयं अपने आपको तथा अपने प्रेम के अहेतुकी दानों को प्रदान करते हैं।

इस योग की दूसरी प्रक्रिया है द्रष्टाभाव से अलग होकर अपने अंदर दिव्य शक्ति की क्रिया को देखना। दिव्य शक्ति की यह क्रिया जब हमारे अंदर होती है तब बहुधा देहादि में विक्षोभ और कष्ट उत्पन्न होता है; अतएव श्रद्धा का होना अत्यंत आवश्यक है, यद्यपि पूर्ण श्रद्धा का एकबारगी हो जाना सदा संभव नहीं है; क्योंकि तुम्हारे अन्दर जो कुछ मलिनता है–चाहे वह बाहर दिखायी पड़ती हो या भीतर छिपी पड़ी हो–वह आरंभ में उमड़ पड़ती है और जब तक वह जड़मूल से बाहर नहीं निकाल दी जाती तबतक वह बार–बार आक्रमण करती रहती है और इस अवस्था में संदेह का उत्पन्न होना एक ऐसी मलिनता है जो प्रायः सभी साधकों में पायी जाती है।

इस योग की तीसरी प्रक्रिया है सभी वस्तुओं को भगवान् के रूप में देखना। साधारणतया ज्ञान की इस प्रक्रिया में सबसे पहले साधक एक दिव्य निर्व्यक्तिक सत्ता को, सद् आत्मा को समस्त देश और काल के अंदर परिव्याप्त देखता है जिसमें कोई गति, कोई भेद या आकृति नहीं होती, जो 'शान्तम् अलक्षणम्' होती है, जिसमें सभी नाम और रूप ऐसे जान पड़ते हैं मानों उनमें सद्वस्तु का अस्तित्व या तो अत्यंत संदिग्ध या अत्यंत नगण्य रूप में ही है। इस अनुभूति में ऐसा प्रतीत हो सकता है कि एकमात्र सद्वस्तु तो बस 'एक' ही है और अन्य सब कुछ माया है, उद्देश्यहीन और अनिर्वचनीय भ्रम है। परंतु उसके बाद, यदि तुम यहीं रूक न जाओ और अपने आपको इस निर्व्यक्तिक अनुभूति द्वारा सीमित न कर लो तो तुम्हें यह दिखायी देगा कि वही आत्मा सभी सृष्ट वस्तुओं को न केवल अपने अंदर रखता और धारण करता है बल्कि उनमें परिव्याप्त और ओतप्रोत भी हो रहा है, और अंत में तुम यह समझ सकोगे कि ये सब नाम और रूप भी ब्रह्म ही हैं।

तीसरी अवस्था दूसरी अवस्था में से ही, भगवान् की पूर्ण उपलब्धि होने पर अथवा भगवान् की कृपा से अपने–आप ही निकल आती है। उस समय न केवल पुरूष अपने–आपको अलग कर लेगा और त्रिगुणातीत हो जायेगा, बल्कि प्रकृति भी, गुणों का उपयोग करते हुए भी, उनके बंधन से मुक्त हो जायेगी। जिसे हम सत्त्व कहते हैं वह शुद्ध प्रकाश और ज्योति में परिणत हो जायेगा और प्रकृति एक विशुद्ध, स्वतंत्र और अनंत स्वतःस्थित ज्योति में निवास करेगी। जिसे हम तमस् कहते हैं वह शुद्ध शम या शांति में परिवर्तित हो जायेगा और प्रकृति एक अनंत और अवर्णनीय विश्राम और शांति के ऊपर दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जायेगी। जिसे हम रजस् कहते हैं वह शुद्ध तपस् में रूपांतरित हो जायेगा और प्रकृति दिव्य शक्ति के उन्मुक्त और अनंत समद्र में प्रवाहित होने लगेगी।

निष्कर्ष–

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द ने अपना सारा जीवन भारत की स्वाधीनता के लिए लगा दिया। 1905 से 1910 तक निरन्तर वह अपने देशवासियों को विदेशी राज्य से मुक्त कराने में ही जूझते रहे। वह आतंकवादियों की राष्ट्रीय पार्टी के महत्वपूर्ण नेता थे। वह राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता एवं स्वराज्य, स्वदेशी के लिये लड़ रहे थे। श्री अरविन्द के लेखों में हमें स्वतंत्रता की समस्या का बहुत ही विस्तृत विश्लेषण एवं परिचर्चा प्राप्त होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. दिनकर, रामधारी सिंह : चेतना की शिला, पटना, उदयाचल 1973।
2. नरवणे, विश्वनाथ : अनु0 नेमिचन्द्र जैन, आधुनिक भारतीय चिन्तर, प्रथम हिन्दी संस्करण, दिल्ली 1966 ।
3. नारायण इकबाल : राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान इन्दौर, 1981, प्र0 संस्करण।
4. नवजात : श्री अरविन्द, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1978।
5. वाचस्पति, इन्द्र विद्या : ''भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास'', सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली 1960 ।
6. सत्य–भक्त : ''क्रान्ति पथ के पथिक'', 1973 प्रकाशक बेलनगंज, आगरा।
7. सीतारामय्या वी0पी0 हिन्दी सम्पादक श्री हरिमाऊ उपाध्याय (अनु0) : ''कांग्रेस का इतिहास'' प्रथम खण्ड, 1885–1935, नयी दिल्ली 1949।